

योगदर्शन में स्वास्थ्य की उपादेयता

डा.अशोक कुमार मीना (सहाचार्यः)

‘योग’ शब्द ‘युज्’ धातु में ‘घञ्’ प्रत्यय लगाने से निष्पन्न होता है। पाणिनिय व्याकरण के अनुसार ‘युज्’ धातु तीन गणों में गणित है –

- (1) ‘युज् समाधौ’ दिवादिगणिय (आत्मनेपदी)
- (2) ‘युजीर् योगे’ रूधादिगणिय (उभयपदी)
- (3) ‘युज् संयमने’ चुरादिगणिय (परस्मैपदी)

इन तीन धातुओं से अलग-अलग बने हुए ‘योग’ शब्दों का अर्थ क्रमशः (1) समाधि (2) जोड ओर (3) संयमन होता है। संस्कृतवाङ्मय में इन तीनों अर्थों वाले ‘योग’ शब्दों का प्रयोग होता रहा है। योगदर्शन में ‘योग’ शब्द का अर्थ समाधि अर्थात् चित्तवृत्ति का निरोध स्वीकार किय गया है –

(क) “ योगः समाधिः स च सार्वभौमः चित्तस्य धर्मः।”¹

(ख) “योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।”²

इससे सिद्ध होता है पातञ्जल ‘योग’ का ग्रहण समाधि अर्थात् ‘चित्तवृत्तिनिरोध’ के रूप में ही होना चाहिए। दिवादिगणिय युज् समाधौ धातु से निष्पन्न शब्द अन्य अर्थों में प्रयुक्त नहीं माना जा सकता क्योंकि पातञ्जल योग संयोग रूप न होकर वियोगफलक है अर्थात् कैवल्य देने वाला होता है। वह दुःख की निवृत्ति करने वाला है जैसा कि गीता में कहा गया है – दुःखसंयोगवियोगं योगसङ्गीतम्³ ।

पातञ्जलि के द्वारा अनुशासित योग के इसी स्वरूप का सादर निर्वचन करते हुए भोजराज ने कहा है

पातञ्जलिमुनेरुक्तिः काव्यपूर्वा जयत्यसौ ।

पुं प्रकृत्योर्वियोगोऽपि योग इत्युदितो मया ॥⁴

¹. यो.सू. 1/1 व्या.भा.

². यो.सू.1/2

³. भ.गी.6/23

⁴. रा.मा.वृ. पृ.1

योग परम्परा

सर्वज्ञानमयी वैदिक संहिताओं का मूलाधार यौगिक प्रक्रिया ही है। अतः वेद से पूर्व भी योगवातावरण की स्थिति सिद्ध है। योगी परम्परा की मान्यता है कि **हिरण्यगर्भः** ही योग के आदि प्रवक्ता है अन्य कोई नहीं।⁵ ऋग्वेद में इसकी पुष्टि करते हुए कहा गया है कि जब सृष्टि नहीं हुई थी तब एक अद्वितीय हिरण्यगर्भ जो सूर्यादि तेजस्वी पदार्थों का गर्भ उत्पत्तिस्थान उत्पादक है वह ही प्रथम था। वह सब जगत का सनातन प्रादुर्भूत प्रसिद्ध पति है।⁶ इस प्रकार हिरण्यगर्भ की स्तुति वेदों में अन्यत्र भी की गई है। यह हिरण्यगर्भ परमात्मा ही है क्योंकि वही उत्पन्न हुए सब प्राणियों का स्वामी हो सकता है जिसको अन्य शास्त्रों में भी स्वीकार किया है। यदि हिरण्यगर्भ नामक कोई ऋषि होता तो अन्य ऋषियों के समान पुराण, इतिहास आदि में उसका कोई इतिहास उपलब्ध होता। हिरण्यगर्भ परमात्मा गुरुओं का भी गुरु है, वही सब से पुरातन है।

महाभारत में सांख्य का प्रवक्ता कपिल तथा योग का आदिप्रवक्ता हिरण्यगर्भ बताया है।⁷ योग प्रकट होने के रहस्य को दर्शाते हुए आगे कहा है कि यह द्युतिमान् हिरण्यगर्भ वही है जिसकी वेदों में स्तुति की गई है एवं जिसकी योगी लोग नित्य पूजा करते हैं जो संसार में विभु कहा गया है।⁸ इसी को योगी लोग महान् तथा विरञ्चि और अज(अजन्मा) भी कहते हैं।⁹

‘अद्भूत् रामायण’ में तो स्पष्ट ही हिरण्यगर्भ को जगत् का अन्तरात्मा बताया गया है।¹⁰ श्रीमद्भागवत में कहा है कि हे योगेश्वर ! यह योग कौशल वही है जिसे भगवान् हिरण्यगर्भ ने कहा है।¹¹ परमात्मा ही है। हिरण्यगर्भ से अग्नि, वायु, आदित्य, और अङ्गिरा – इन चार ऋषियों ने समाधि की उच्चस्तरीय भूमियों में वेदमन्त्रों का साक्षात्कार किया। इस विषय में डॉ कपिलदेव का कहना है – “अग्नि आदि का चेतन होना तथा ऋषि होने का उल्लेख कहीं नहीं मिलता”।¹² महर्षि दयानन्द के अनुसार – “धर्मात्मा, योगी, महर्षि लोग

⁵. हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः । महा. 12/349/65

⁶. हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् । ऋग्. 10/121/1, यजु. 23/4

⁷. सांख्यस्य वक्ता क पलः परम षः स उच्यते ।

हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः ॥ महा. 12/349/65

⁸. हरण्यगर्भो द्युतिमान य एष छन्द स स्तुतः ।

योगैः सम्पूज्यते नित्यं स च लोके वभूतः स्मृतः ॥ महा. 12/342/96

⁹. हिरण्यगर्भो भगवान् एष बुद्धिरिति स्मृतः ।

महानिति च योगेषु वरञ्चिरिति चाप्यजः ॥ महा.

¹⁰. हिरण्यगर्भो जगदन्तरात्मा.....। अद्भूत् रामायण, 5/6

¹¹. इदं हि योगेश्वर ! योगनैपुणं हिरण्यगर्भो भगवान् जगद यत् ॥ श्रीमद्भागवत, 5/19/13

¹². योग का आत्मचरित्र, योगावतरण, पूर्वार्द्ध, पृ. 17/18

जब जब जिस- जिस अर्थ को जानने की इच्छा करके ध्यानावस्थित होकर परमेश्वर के स्वरूप में समाधिस्थ हे, तब- तब परमात्मा ने अभिष्ट मन्त्रों के अर्थ जनाये”¹³ वहि उन मन्त्रों के द्रष्टा ऋषि कहलाए।

इन ऋषियों का कालक्रम पूर्णरूप से उपलब्ध नहीं होता। अतः वह अन्वेषणीय है। इस ऋषि परम्परा के अतिरिक्त मुण्डकोपनिषद् में ब्रह्म विद्या अर्थात् योगविद्या की शष्य- परम्परा का प्रारम्भित महत्वपूर्ण संकेत इस प्रकार मिलता है – “देवों में मुख्य देव सर्वप्रथम ब्रह्मा हुआ जो सारे जगत् का कर्त्ता और सब लोकों का रक्षक है। उसमे सब विधोओं में प्रतिष्ठित प्रधान ब्रह्मविद्या अपने ज्येष्ठपुत्र अथर्वा को कही, अथर्वा ने अङ्गिरा को बताई, अङ्गिरा ने भरद्वाज – गोत्रीय सत्यवाह को बताई।” प्रतीत होता है विभिन्न ऋषियों की पृथक पृथक परम्पराएँ चलती रही हैं।

काल की दृष्टि से पातञ्जल योग से सांख्यदर्शन प्राचीन है। सांख्यदर्शन में भी प्रकृतिपुरुष के भेद का उपपादन है किन्तु उससे शाब्दिक रूप में ही भेद का ज्ञान हो पाता है। सांख्यदर्शन में ज्ञान से मुक्ति तथा ज्ञान के उपायरूप से वृत्तिनिरोध, आसन, धारणा, ध्यान, अभ्यास, वैराग्यादि का उल्लेख किया गया है। इनके क्रियात्मक प्रयोग का विवरण योगदर्शन में उपलब्ध है। इसी प्रकार न्यायदर्शन (4/2/46) में कहा है कि समाधि सिद्धि के लिए यम- नियम आदि के आचरण से रागादिमलों के नाश द्वारा आत्मा को शुद्ध संस्कारयुक्त बनाकर योग एवं अध्यात्म शास्त्रों में बताए गए उपायों का अवलम्बन करना चाहिए। वैशेषिक दर्शन में धर्मविशेष से उत्पन्न तत्त्वज्ञान से निःश्रेयस् (मोक्ष) की प्राप्ति बताई गई है।¹⁴ यहाँ भी तत्त्व ज्ञान के लिए यौगिक उपायों के अनुष्ठान का संकेत उपलब्ध है। वेदान्त दर्शन (4/1/7-11) में चित्तवृत्ति निरोध के लिए सन, प्राणायाम, ध्यान, एकाग्रता आदि उन उपायों का संकेत है जिनका विधान योगदर्शन में किया गया है। इस प्रकार अन्य दर्शनों का पूरक होता हुआ यह ‘योगदर्शन’ पतञ्जलि ऋषि द्वारा निबद्ध योग प्रक्रिया है तथा व्यावहारिक जीवन से सम्बन्धित शास्त्र है।

स्वास्थ्य – लक्षण एवं स्वरूप

सुश्रुत संहिता के अनुसार – “स्वस्थ्य वही है जिसके शरीर में वात, पित्त और कफ- तीनों दोष सम मात्रा में विद्यमान हों। जठराग्नि न मन्द, न अधिक तीव्र हो अर्थात् सम हो। रक्त, रस, मांस, मज्जा, अस्थि, मेद, शुक्र – ये सब धातुएँ सम अवस्था में हों। शरीर से मल- मूत्र तथा स्वेदादि की विसर्जन क्रिया भी सम अवस्था में ठीक कार्य करती हो। आत्मा एवम् इससे संयुक्त मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों में आन्तरिक प्रसन्नता की लहर उठती हो।”¹⁵

¹³. वैदिक ऋषि : एक परिशीलन

¹⁴. धर्म विशेषप्रसूताद् द्रव्यगुणकर्मसामान्य विशेषसमवायानां पदार्थानां साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसम्। - वैशेषिक, 1/1/4

¹⁵. समदोषः समाग्निश्च समधातुमल क्रयः ।

सुश्रुत द्वारा दी गई स्वस्थ मानव की परिभाषा के अनुसार यदि हम निष्कर्ष निकालें तो चाहे अत्यधिक परिश्रमी श्रमीक हो या व्यायामशील मल्ल, कंकड – पत्थर पचाने वाला या धृत, दुग्ध आदि पौष्टिक भोजन की पुष्काल मात्रा पचाने के समर्थ से युक्त हो। चारों को बुलाने वाली खर्राटे की निद्रा आती हो, उपर से बिल्कुल ठीक दिखाई देता हो। इतना होते हुए भी यदि उसे मानसिक चिन्ताएँ खाये जा रही हैं। हर समय मस्तिष्क में चिन्ता- वितान का तनाव रहता हो। मन तथा इन्द्रियाँ वश में न हों। आत्मा में निर्भरता और शान्ति न हो। अध्यात्म प्रसाद की उन्मत्त तरंगों उसे तरंगित न करती हों तो ऐसे नरदेहधारी को देख कर यह नहीं समझना चाहिए कि वह स्वस्थ है अथवा सुखी है। वह मानसिक रोगी है। सूक्ष्म शरीर के भयानक रोगों का शिकार है। स्थूल शरीर के थोडा सा शिथिल होते ही ये मानसिक रोग उसे शारीरिक रूप से भी रोगी बना देंगे। शारीरिक तथा मानसिक से सामाजिक स्वास्थ्य की कल्पना करना भी नितान्त असंगत है।

इन सभ प्रकार के स्वास्थ्यों के लाभ हेतु प्राचीन योगदर्शन द्वारा दर्शित योग सरणि ही एक सरल और सुगम उपाय है।

रोग के निदान योग

आरोग्य मनुष्य – जीवन में प्रसव्य चारों पुरुषार्थों – धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का मूल है। योग – साधना में भी व्याधि को योग का सर्वप्रमुख विघ्न माना गया है। अतएव लौकिक या अलौकिक पुरुषार्थ के सम्पादान में समर्थ बने रहने के आरोग्यवान् – आधि – व्याधिशून्य बने रहना अत्यन्त आवश्यक है। आयुर्वेद के अनुसार स्वस्थ पुरुष का लक्षण है आत्मा, मन एव इन्द्रियों के प्रसन्न रहने के लिए साथ- साथ शरीर – स्थिति दोष- अग्नि, धातु, मल एवं क्रियाओं का सम – अवस्था में रहना।

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।

प्रसन्नात्मेन्द्रियामनः स्वस्थ इत्यभिधीयते ॥¹⁶

समत्व ही योग का एव सृष्टि व्यवस्था का मूल आधा है विषमता से स्विकार की उत्पत्ति होती है। सूक्ष्म दृष्टि रखने वाले ऋषि एवं विकार की उत्पत्ति होती है। सूक्ष्म दृष्टि रखने योगिपण केवल शारीरिक योग एवं बाह्य वैषम्य पर ही नहीं; अपितु इनके उत्पादक सूक्ष्म शरीर के वैषम्य को भी दृष्टि में रखते थे तथा उस विषमता को भी उत्पन्न करने वाले कारणों को दूरकर शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक तीनों प्रकार के स्वास्थ्य – लाभ का उपदेश देते रहे हैं। स्वास्थ्य के विकार कर्मदोष दुर्वृत्त प्रज्ञाविकार, रजोगुण एवं तमोगुण का प्राभाव, शरीरगत पञ्चभूता में से किन्हीं का क्षय श्वास प्रक्रिया में विपर्यय वातादि दोषों की वृद्धि, अपस्थ- भोजन आदि कारणों से होते हैं। आयुर्वेदिक दृष्टि से व्यक्ति या जनपद में रहने होने वाले व्याधि – दुःख का कारण प्रज्ञाविकार है। बुद्धि शरीर – सत्ता की संचालिका है। बुद्धि में लोभ, मोह, क्रोध, अभिमान आदि की

प्रसन्नात्मेन्द्रियमनः स्वस्थ इत्यभिधीयते ॥ - सुश्रुत सं., सूत्रस्थान 15A8

¹⁶. सुश्रुतसंहिता सूत्रस्थान 15A8

उत्पत्ति होने से व्यक्ति अधर्माचरण करने लगता है। अतः उस अधर्माचरण के फलस्वरूप नाना प्रकार की व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं, जिनसे सभी व्यक्ति दुःखी होते हैं। व्यक्तिगत अधर्माचरण का फल व्यक्ति को व्याधि के रूप में मिलता है एवं समूह रूप में किये गये अधर्म का फल जाति, समुदाय, ग्राम, नगर, प्रान्त, राष्ट्र एवं विश्व को व्यापक व्याधियों एवं अन्य उपद्रवों के रूप में मिलता है।

हठयोग के अनुसार भौतिक शरीर के दोषों के दूर करने के लिये एवं स्वस्थ बने रहने के लिए षट्कर्म, आसन, प्राणायाम, मुद्रा, धारणा एवं ध्यान का आलम्बन लेना चाहिये। षट्कर्म का उपयोग प्रवृद्ध कफ - दोष को दूर करके वात, पित्त एवं कफ - इन तीनों दोषों को समभाव में स्थापित करने के लिए होता है। यदि कफ- दोष बढ़ा न हो तो जिस अङ्ग में विकार या अशक्ति प्रतीत हो, उसी अङ्ग को बलवान् बनाने या उस अङ्ग से विकार को दूर करने के लिए षट्कर्मों में से यथावश्यक दो या तीन अथवा चार कर्मों का अभ्यास करना चाहिये। धौति, वस्ति, नेति, त्राटक, नौलिक तथा कपालभाति - इन छः क्रियाओं को षट्कर्म कहते हैं। धौति- कर्म कण्ठ से आमाशय तक के मार्ग को स्वच्छ करके सभी प्रकार के कफरोगों का नाश कर देता है। यह विशेष रूप से कफ प्रधान कास, श्वास, प्लीहा एवं कुष्ठरोग में लाभकारी है। इससे अपानवायु एवं मलान्त्र के विकार से उत्पन्न होने वाले रोगों का शमन हो जाता है। आँतों की गर्मी शान्त होती है। कोष्ठबद्धता दूर होती है। आँतों में स्थित- संचित दोष नष्ट होते हैं। जठराग्नि की वृद्धि होती है। अनेक उदररोग नष्ट होते हैं। वस्ति - कर्म करने से वात- पित्त एवं कफ से नष्ट होते हैं। वस्ति - कर्म करने से वात - पित्त एवं कफ से उत्पन्न अनेक रोग तथा गुल्म, प्लीहा और जलोदर दूर होते हैं। नेतिकर्म नासिकामार्ग को स्वच्छ कर कपाल -शोधन का कार्य करता है। यह विशेष रूप से नेत्रों को उत्तम दृष्टि प्रदान करता है और गले से ऊपर होने वाले दाँत, मुख, जिह्वा, कर्म एवं शिरोरोगों का नष्ट करता है। त्राटक - क्रमद्वारा नेत्रों के अनेक रोग नष्ट होते हैं एवं निद्रा, आलस्य आदि दोष नष्ट होते हैं। उदररोग एवं अन्य सभी दोषों का नाश करने के लिये नौलिकर्म प्रमुख है। यह मन्दाग्निको नष्टकर जठराग्नि की वृद्धि करता है तथा भुक्तान्न को सुन्दर प्रकार से पचाने की शक्ति प्रदान करता है। इसका अभ्यास करने से वातादि दोषों का शमन होने से चित्त सदा प्रसन्न रहता है। कपालभाति विशेष रूप से कफ - दोष - मलादिक क्षीण हो जाते हैं, तब प्राणायाम का अभ्यास करने से अधिक शीघ्र सफलता मिलती है।

जिन्हें पित्त की अधिक शिकायत सहती है, उनके लिये गजकर्णी या कुंजल - क्रिया लाभदायक रहती है। इस क्रिया में प्रातःकाल शौचादि से निवृत्त होने के बाद पर्याप्त मात्रा में नमकमिश्रित कुनकुना जल पीकर फिर वमन कर दिया जाता है। इससे आमाशयस्थ पित्त का शोधन होता है। जिन्हें मन्दाग्निकी शिकायत है या जिनका स्वास्थ्य उत्तम भोजन करने पर सुधरता नहीं है, उन्हें अग्निसार नामक क्रिया का अभ्यास करना चाहिये। इस क्रिया में नाभिग्रन्थि को बार- बार मेरु - पुष्ठ में लगना होता है। एक सौ बार लगा सकने का अभ्यास हो जाने पर समझाना चाहिये कि इस क्रिया में परिपक्वता प्राप्त हो गयी है, यह सभी प्रकार के उदररोगों को दूर करने में सहायक है।

आसन का अभ्यास शरीर से जडता, आलस्य एवं चञ्चलता को दूर करके सम्पूर्ण स्नायु – संस्थान एवं प्रत्येक अङ्ग को पुष्ट बनाने के लिये होता है। इसके अभ्यास से शरीर के अङ्ग के सभी भागों में एवं सूक्ष्मातिसूक्ष्म नाडियों में रक्त पहुँचता है, सभी ग्रन्थियाँ सुचारु रूप से कार्य करती हैं ष स्नायु – संस्थान बलवान् हो जाने पर साधक काम, क्रोध, भय आदि के आवेगों को सहने में समर्थ होता है। वह मानस – रोगी नहीं बनता। शरीर का स्वास्थ्य मस्तिष्क, मेरुदण्ड, स्नायु- संस्थान, हृदय एवं फेफड़े तथा उदर के बलवान् होने पर निर्भर है। अतः आसनों का चुनाव इन पर पडने वाले प्रभावों को दृष्टि में रखकर करना चाहिये। जिसका जो अङ्ग कमजोर हो उसे सर्वाङ्गिक व्यायाम के आसनों का अभ्यास करने के साथ – साथ उन दुर्बल अङ्गों को पुष्ट करने वाले आसनों का अभ्यास विशेष रूप से करना चाहिये। ध्यान के उपयोगी पद्मासन आदि के सर्वरोगनाशक इसलिये कहा जाता है कि इन आसनों से ध्यान या जप में बैठने पर शरीर में साम्यभाव, निश्चलता, शान्ति आदि गुण आ जाते हैं, जो भौतिक स्तरपर सत्त्वगुण की वृद्धि करने में सहायक होते हैं। आरोग्य की दृष्टि में किये जाने वाले आसनों में पश्चिमोत्तान, मत्स्येन्द्र, गोरक्ष, सर्वाङ्ग, मयुर, भूजंग, शुलभ, धनु कुक्कुट, आकर्षणधनु एवं पद्म – आसन मुख्य हैं।

आसनों को शनैः – शनैः किया जाए, जिससे अङ्गों एवं नाडियों में तनाव, स्थिरता, संतुलन, सहनशीलता एवं शिथिलता आ सके। अपनी पूर्ववत् स्थिति में भी धीरे – धीरे ही आना चाहिये। जो अङ्ग रोगी हो, उस अङ्ग पर बोझ डालने वाले आसनों का अभ्यास अधिक नहीं करना चाहिये। जैसे जिनके पेट में घाव है या जो स्त्रियाँ मासिक – धर्म में युक्त हैं, उन्हें उन दिनों पेट के आसन नहीं करने चाहिये। जिस आसन का प्राभाव जिस ग्लैंड्स ये नाडि – चक्र पर पडता है – आसन करते समय वहीं ध्यान केन्द्रित करना चाहिये तथा गायत्री आदि मन्त्रों का या तेज, बल, शक्ति देने वाले मन्त्रों का यथाशक्ति स्मरण करना चाहिये। एक आसन का प्रतियोगी भूजंगासन और शलभासन है। हस्तपादासन का प्रतियोगी चक्रासन है। सर्वाङ्गासन का अभ्यास आवश्यक है। सूर्यनमस्कार को अन्य आसनों के अभ्यास के पूर्व कर लेना लाभकारी है।

प्राणायाम का अभ्यास शरीरस्थ सभी दोषों का निराकरण कर प्राणमय कोष एवं सूक्ष्म शरीर को नीरोग तथा पुष्ट बनाता है। नाडी – शोधन का अभ्यास युक्तिपूर्वक शनैः – शनैः ही करने चाहिये तथा भस्त्रिका प्राणायाम को छोड़कर सभी शेष प्राणायामों में रेचक एवं पूरक, दोनों की क्रियाएँ बहुत धीरे – धीरे करनी चाहिये। प्रत्येक कुम्भक की अपनी – अपनी दोषनाशक विशेष शक्ति है। अतः प्रवृद्ध दोष का विचार करके ही उसके दोषनाशक कुम्भक का अभ्यास करना चाहिये। सूर्यभेद प्राणायाम पित्तवर्धक, जरादोषनाशक, वातहर, कपालदोष एवं कृमिदोष को नष्ट करने वाला है। उज्जयी कफरोग, क्रूरवायु, अजीर्ण, जलोदर, आमवात, क्षय, कास, ज्वर एवं प्लीहा को नष्ट करता है। स्वास्थ्य एवं पुष्टि की प्राप्ति के लिये उज्जायी प्राणायाम का विशेष रूप से अभ्यास करना चाहिये। शीतली प्राणायाम अजीर्ण, कफ, वात, पित्त, कफ, हर, शरीरान्निवर्धक एवं सर्वरोगहर है। व्यवहार में संध्योपासना के उपरान्त एवं जपसे पूर्व नाडी – शोधन, उज्जायी एवं भस्त्रिका प्राणायाम का नित्य अभ्यास करने का प्रचलन है।

रोग – निवारण के लिये स्वर – योग का आश्रय भी लिया जाता है। नीरोगता के लिये भोजन सदा दायँ स्वर (श्वास) चलने पर करना चाहिये। वाम स्वर शीतल एवं दक्षिण स्वर उष्ण माना जाता है। उसके अनुसार ही वात एवं कफ – प्रधान रोगों में दक्षिण नासिका से श्वास को चलाया जाता है एवं पित – प्रधान रोग में वाम स्वर से श्वास को चलाया जाता है। सामान्य नियम यह है कि रोग में प्रारम्भकाल में जिस नासिका से श्वास चल रहा होता है। इस स्वर – परिवर्तन से प्रवृद्ध दोष का संशमन हो जाता है। स्वरयोग की जानकारी के लिये **शिवस्वरोदय** एवं **स्वर – चिन्तामणि** नामक ग्रन्थों का अवलोकन करना चाहिये।

मुद्राओं के अभ्यास में महामुद्रा, खेचरी, उड्डीयानबन्ध, जालन्धरबन्ध, मूलबन्ध एवं विपरीतकरणी मुख्य हैं। महामुद्रा क्षय, कुष्ठ, आवर्त, गुल्म, अजीर्ण आदि रोगों एवं सभी दोषों को नष्ट करती है इसके अभ्यास से पाचन – शक्ति की प्रचण्ड वृद्धि होकर विष को क्षमता प्राप्त होती है। महामुद्रा के साथ महाबन्ध एवं महावेध का भी अभ्यास किया जाता है। इन तीनों के अभ्यास से वृद्धत्व दूर होता है एवं अनेकक शारीरिक सिद्धियों की प्राप्ति होती है। शरीर की सोमकला का विकास होता है तथा देह – क्षय की प्रक्रिया रुक जाती है। उड्डीयान का अभ्यास उदर एवं नाभि से नीचे स्थित अङ्गों के रोगों को दूर कर पुरुषत्व की अभिवृद्धि करता है। जननाङ्ग एवं प्रजननाङ्ग के रोगों से पिडित नर – नारियों को उड्डीयान बन्ध का विशेष अभ्यास करना चाहिये। जीलन्धरबन्ध से कण्ठरोगों एवं शिरोरोगों का नाश होता है तथा मूलबन्ध का अभ्यास गुदा एवं जननेन्द्रिय पर, प्राण एवं अपान पर नियन्त्रण प्रदान करता है। उड्डीयान एवं जीलन्धरबन्ध का अभ्यास तो प्राणायाम के समय ही किया जाता है, परन्तु मूलबन्ध का अभ्यास सतत करना चाहिये। विपरीतकरणी मुद्रा की ठीक – ठीक अभ्यास वलीपलीक को दूर कर युवावस्था प्रदान करता है।

पूर्वोक्त मुद्राओं के अतिरिक्त घेरण्डसंहिता प्रोक्त कुछ अन्य मुद्राओं का अभ्यास भी रोगनाश, वलीपलितविनाश एवं स्वास्थ्य – लाभ के लिये उपयोगी है। इनमें से नभोमुद्रा एवं माण्डूकीमुद्रा तालुस्थित अमृतपान में सहायक होने के कारण सभी रोगों का नाश करने वाली है। अश्विनीमुद्रा गुह्यरोगों का नाश करने वाली, अकालमृत्यु को दूर करने वाली तथा बल एवं पुष्टि प्रदान करने वाली है। तथा चित्त को रोग- द्वेष – मोहादि दोषों से दूर करना चाहिये। सम्पूर्ण दुःखों का मूल कारण तमोगुणजनित अज्ञान, लोभ, क्रोध तथा मोह है। त्रिगुण के प्रभाव तथा अज्ञान के बन्धन से मुक्त होने का एकमात्र उपाय योग है तथा योगबल से भी बड़ी शक्ति है भगवान् की अनुग्रहशक्ति।

अतएव अहंता – ममता का त्याग करके भगवच्चरणों का एकमात्र आश्रय लेकर योगसाधन करने से शारीरिक व्यक्ति के साथ – साथ त्रिविध ताप एवं भवव्याधि भी कट जाती है और ऐसा साधक पूर्णतम आनन्द को प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है।

विभागाध्यक्ष,

सांख्ययोगविभागः

श्रीसदाशिवपरिसर
पुरी, ओडिशा

सहायकग्रन्थसूची

1. घेरण्डसंहिता (योगतत्त्वम्) आचार्यश्रीनिवासशर्मा, चौखम्बाविद्याभवनम्, वाराणसी, २०१७
2. तत्त्ववैशारदी वाचस्पतिमिश्रः, भारतीयविद्याप्रकाशन, वाराणसी, १९८७
3. नागेजीभट्टवृत्तिः भट्टः नागेजी, जयकृष्णदासप्रकाशनम्, हरिदासगुप्ता, वाराणसी, १९७१
4. पातञ्जलियोगदर्शनम् भट्टाचार्यः, रामशङ्करः, मोतीलालवनारसीदास, दिल्ली, तृतीयसंस्करण, १९८७
5. पातञ्जलियोगदर्शनम् डॉ. सुरेन्द्र चन्द्र श्रीवास्तव, चौखम्बा संस्कृतभारती, २०१२
6. हठयोगप्रदीपिका ज्ञानशङ्कर सहाय, चौखम्बा सुरभारतीप्रकाशन